

शास्त्र का अर्थ करने की पद्धति

व्यवहारनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को तथा उसके भावों को एवं कारण-कार्यादि को किसी को किसी में मिला कर निरूपण करता है, इसलिये ऐसे ही श्रद्धानसे मिथ्यात्व है, अतः इसका त्याग करना चाहिये। और निश्चयनय उसी को यथावत् निरूपण करता है, तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता, इसलिये ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, अतः उसका श्रद्धान करना चाहिये।

प्रश्न—यदि ऐसा है तो, जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण ?

उत्तर—जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनयन की मुख्यता सहित व्याख्यान है, उसे तो “सत्यार्थ इसी प्रकार है” ऐसा समझना चाहिये, तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लेकर कथन किया गया है, उसे “ऐसा नहीं है किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है” ऐसा जानना चाहिये; और इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है। किन्तु दोनों नयों के व्याख्यान (कथन-विवेचन) को समान सत्यार्थ जानकर “इस प्रकार भी है और इस प्रकार भी है” इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तने से तो दोनों नयों का ग्रहण करना कहा नहीं है।

प्रश्न—यदि व्यवहारनय असत्यार्थ है तो जिनमार्ग में उसका उपदेश क्यों दिया है ? एक मात्र निश्चयनय का ही निरूपण करना चाहिये था।

उत्तर—ऐसा ही तर्क श्री समयसारमें किया है, वहाँ यह उत्तर दिया है कि—जैसे किसी अनार्य-म्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा के बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है, उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है इसलिये व्यवहार का उपदेश है। और फिर इसी सूत्र की व्याख्या में ऐसा कहा है कि—इस प्रकार निश्चय को अंगीकार कराने के लिये व्यवहार के द्वारा उपदेश देते हैं, किन्तु व्यवहारनय है वह अंगीकार करने योग्य नहीं है।

—श्री मोक्षमार्ग प्रकाशक में, पं. टोडरमलजी

चार अनुयोग

[आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी की असाधारण विद्वत्ता और अमोघ पाण्डित्य पूर्णतया सर्वमान्य है। 'मोक्षमार्गप्रकाश' पंडितजीकी अलौकिक मौलिक कृति रही। मोक्षमार्गप्रकाश के आठवे अध्याय में चार अनुयोगों का महत्त्वपूर्ण विवेचन पूर्णरूपेण आया है। जैन साहित्य के और जैनसिद्धांत के मर्मका मूलग्राही ज्ञान होने के लिए चारों अनुयोगों का विभाजन, अनुयोगका प्रयोजन, विषयविवेचन पद्धति आदि विषयक यथार्थ कल्पना आना अति आवश्यक है। इस दृष्टि से मोक्षमार्गप्रकाश के आठवे अध्याय का मुख्य मुख्य अंश पंडितजी केहि शब्दों में (प्रचलित हिन्दी में परिवर्तित रूप में) भावार्थ में विसंगति न हो इसकी सावधानीपूर्वक दक्षता लेकर प्रारंभ में उद्धृत किया जाता है जो जिनवाणीके रसस्वादमें दीपस्तंभके समान मार्गदर्शक होगा।]

अब मिथ्यादृष्टि जीवों को मोक्षमार्गका उपदेश देकर उनका उपकार करना यही उत्तम उपकार है। तीर्थंकर, गणधरादिक भी ऐसा ही उपकार करते हैं; इसलिए इस शास्त्रमें भी उन्हींके उपदेशानुसार उपदेश देते हैं। वहाँ उपदेशका स्वरूप जाननेके अर्थ कुछ व्याख्यान करते हैं; क्योंकि उपदेशको यथावत् न पहिचाने तो अन्यथा मानकर विपरीत प्रवर्तन करे। इसलिए उपदेशका स्वरूप कहते हैं—

जिनमतमें उपदेश चार अनुयोगके द्वारा दिया है—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, यह चार अनुयोग हैं। वहाँ तीर्थंकर—चक्रवर्ती आदि महान पुरुषोंके चरित्रका जिसमें निरूपण किया हो वह प्रथमानुयोग है। तथा गुणस्थानमार्गणादि रूप जीवका व कर्मोंका व त्रिलोकादिकका जिसमें निरूपण हो वह करणानुयोग है। तथा गृहस्थ-मुनिके धर्म आचरण करनेका जिसमें निरूपण हो वह चरणानुयोग है। तथा षट्द्रव्य, सप्ततत्त्वादिकका व स्व-परभेद-विज्ञानादिकका जिसमें निरूपण हो वह द्रव्यानुयोग है। अब इनका प्रयोजन कहते हैं :—

प्रथमानुयोगका प्रयोजन

प्रथमानुयोगमें तो संसारकी विचित्रता, पुण्य-पापका फल, महन्त पुरुषोंकी प्रवृत्ति इत्यादि निरूपणसे जीवोंको धर्ममें लगाया है। जो जीव तुच्छबुद्धि हों वे भी उससे धर्मसन्मुख होते हैं, क्योंकि वे जीव सूक्ष्म निरूपणको नहीं पहिचानते, लौकिक कथाओंको जानते हैं, वहाँ उनका उपयोग लगता है। तथा प्रथमानुयोगमें लौकिक प्रवृत्तिरूप ही निरूपण होनेसे उसे वे भलीभाँति समझ जाते हैं। तथा लोकमें तो राजादिककी

१. रत्नकरण्ड २-२; २. रत्नकरण्ड २-३; ३. रत्नकरण्ड २-४; ४. रत्नकरण्ड २-५ ।

कथाओंमें पापका पोषण होता है। यहाँ महन्त पुरुष-राजादिककी कथाएँ तो हैं, परन्तु प्रयोजन जहाँ-तहाँ पापको छुड़ाकर धर्ममें लगानेका प्रगट करते हैं; इसलिये वे जीव कथाओंके लालचसे तो उन्हें पढ़ते-सुनते हैं और फिर पापको बुरा, धर्मको भला जानकर धर्ममें रचिवंत होते हैं। इसप्रकार तुच्छ बुद्धियोंको समझानेके लिये यह अनुयोग है। 'प्रथम' अर्थात् 'अव्युत्पन्न मिथ्यादृष्टि', उनके अर्थ जो अनुयोग सो प्रथमानुयोग है। ऐसा अर्थ गोम्मटसारकी *टीकामें किया है। तथा जिन जीवोंके तत्त्वज्ञान हुआ हो, पश्चात् इस प्रथमानुयोगको पढ़े-सुनें तो उन्हें यह उसके उदाहरणरूप भासित होता हो। जैसे—जीव अनादिनिधन है, शरीरादिक संयोगी पदार्थ हैं, ऐसा यह जानता था। तथा पुराणोंमें जीवोंके भवान्तर निरूपित किये हैं, वे उस जाननेके उदाहरण हुए। तथा शुभ-अशुभ-शुद्धोपयोगको जानता था, व उनके फलको जानता था। पुराणोंमें उन उपयोगोंकी प्रवृत्ति और उनका फल जीवके हुआ सो निरूपण किया है; वही उस जाननेका उदाहरण हुआ। इसी प्रकार अन्य जानना। यहाँ उदाहरणका अर्थ यह है कि—जिस प्रकार जानता था, उसीप्रकार वहाँ किसी जीवके अवस्था हुई, इसलिये यह उस जाननेकी साक्षी हुई। तथा जैसे कोई सुभट है, वह सुभटोंकी प्रशंसा और कार्योंकी निन्दा जिसमें हो ऐसी किन्हीं पुराण-पुरुषोंकी कथा सुननेसे सुभटपनेमें अति उत्साहवान होता है; उसी प्रकार धर्मात्मा है वह धर्मात्माओंकी प्रशंसा और पापियोंकी निन्दा जिसमें हो ऐसे किन्हीं पुराणपुरुषोंकी कथा सुननेसे धर्ममें अति उत्साहवान होता है।—इसप्रकार यह प्रथमानुयोगका प्रयोजन जानना।

करणानुयोगका प्रयोजन

तथा करणानुयोगमें जीवोंके व कर्मोंके विशेष तथा त्रिलोकादिककी रचना निरूपित करके जीवोंको धर्ममें लगाया है। जो जीव धर्ममें उपयोग लगाना चाहते हैं वे जीवोंके गुणस्थान-मार्गणा आदि विशेष तथा कर्मोंके कारण-अवस्था-फल किस-किसके कैसे-कैसे पाये जाते हैं इत्यादि विशेष तथा त्रिलोकमें नरक-स्वर्गादिके ठिकाने पहिचान कर पापसे विमुख होकर धर्ममें लगते हैं। तथा ऐसे विचारमें उपयोग रम जाये तब पाप-प्रवृत्ति छूटकर स्वयमेव तत्काल धर्म उत्पन्न होता है; उस अभ्याससे तत्त्वज्ञानकी भी प्राप्ति शीघ्र होती है। तथा ऐसा सूक्ष्म यथार्थ कथन जिनमतमें ही है अन्यत्र नहीं है; इसप्रकार महिमा जानकर जिनमतका श्रद्धानी होता है। तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर इस करणानुयोगका अभ्यास करते हैं, उन्हें यह उसके विशेषणरूप भासित होता है। जो जीवादिक तत्त्वोंको आप जानता है उन्हींके विशेष करणानुयोगमें किये हैं; वहाँ कितने ही विशेषण तो यथावत् निश्चयरूप हैं, कितने ही उपचार सहित व्यवहाररूप हैं; कितने ही द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावादिकके स्वरूप प्रमाणादिरूप हैं, कितने ही निमित्त आश्रयादि अपेक्षा सहित हैं। इत्यादि अनेक प्रकारके विशेषण निरूपित किये हैं, उन्हें ज्यों का त्यों मानता हुआ उस करणानुयोगका अभ्यास करता है। इस अभ्याससे तत्त्वज्ञान निर्मल होता है। जैसे कोई यह तो जानता था कि

प्रथमं मिथ्यादृष्टिमव्रतिकमव्युत्पन्नं वा प्रतिपाद्यमाश्रित्य प्रवृत्तोऽनुयोगोऽधिकारः प्रथमानुयोगः ।

(जी० प्र० टी० गा० ३६२-६२)

यह रत्न है। परन्तु उस रत्नके बहुतसे विशेषण जानने पर निर्मल रत्नका पारखी होता है; उसी प्रकार तत्त्वोंको जानता था कि यह जीवादिक हैं, परन्तु उन तत्त्वोंके बहुत विशेष जाने तो निर्मल तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान निर्मल होनेपर आप ही विशेष धर्मात्मा होता है, तथा अन्य ठिकाने उपयोगको लगाये तो रागादिककी वृद्धि होती है और छद्मस्थका उपयोग निरन्तर एकाग्र नहीं रहता; इसलिये ज्ञानी इस करणानुयोगके अभ्यासमें उपयोगको लगाता है; उससे केवलज्ञान द्वारा देखे गये पदार्थोंका जानपना इसके होता है; प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षहीका भेद है, भासित होनेमें विरुद्धता नहीं है। इसप्रकार यह करणानुयोगका प्रयोजन जानना। “करण” अर्थात् गणित कार्यके कारणरूप सूत्र, उनका जिसमें “अनुयोग”—अधिकार हो वह करणानुयोग है इसमें गणित वर्णनकी मुख्यता है—ऐसा जानना।

चरणानुयोगका प्रयोजन

अब, चरणानुयोगका प्रयोजन कहते हैं—चरणानुयोगमें नानाप्रकार धर्मके साधन निरूपित करके जीवोंको धर्ममें लगाते हैं। जो जीव हितअहित को नहीं जानते, हिंसादिक पाप कार्योंमें तत्पर हो रहते हैं; उन्हें जिसप्रकार पापकार्योंको छोड़कर धर्मकार्योंमें लगे, उसप्रकार उपदेश दिया है; उसे जानकर जो धर्म आचरण करनेको सन्मुख हुए, वे जीव गृहस्थधर्म व मुनिधर्मका विधान सुनकर आपसे जैसा सधे वैसे धर्म-साधनमें लगते हैं। ऐसे साधनसे कषाय मन्द होती है और उसके फलमें इतना तो होता है कि—कुगतिमें दुःख नहीं पाते किन्तु सुगतिमें सुख प्राप्त करते हैं, तथा ऐसे साधनसे जिनमतका निमित्त बना रहता है, वहाँ तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होना हो तो होजाती है। तथा जो जीव तत्त्वज्ञानी होकर चरणानुयोगका अभ्यास करते हैं, उन्हें यह सर्व आचरण अपने वीतरागभावके अनुसार भासित होते हैं। एकदेश व सर्वदेश वीतरागता होनेपर ऐसी श्रावकदशा—मुनिदशा होती है; क्योंकि इनके निमित्तनैमित्तिकपना पाया जाता है। ऐसा जानकर श्रावक-मुनिधर्मके विशेष पहिचानकर जैसा अपना वीतरागभाव हुआ हो वैसे अपने योग्य धर्मको साधते हैं। वहाँ जितने अंशमें वीतरागता होती है उसे कार्यकारी जानते हैं, जितने अंशमें राग रहता है उसे हेंय जानते हैं। सम्पूर्ण वीतरागताको परमधर्म मानते हैं।—ऐसा चरणानुयोगका प्रयोजन है।

द्रव्यानुयोगका प्रयोजन

अब, द्रव्यानुयोगका प्रयोजन कहते हैं—द्रव्यानुयोगमें द्रव्योंका व तत्त्वोंका निरूपण करके जीवोंको धर्ममें लगाते हैं। जो जीव जीवादिक द्रव्योंको व तत्त्वोंको नहीं पहिचानते, आपको-परको भिन्न नहीं जानत, उन्हें हेतु-दृष्टान्त-युक्ति द्वारा व प्रमाण-नयादि द्वारा उनका स्वरूप इस प्रकार दिखाया है जिससे उनको प्रतीति हो जाये। उसके अभ्याससे अनादि अज्ञानता दूर होती है। अन्यमत कल्पित तत्त्वादिक झूठ भासित हों तब जिनमतकी प्रतीति हो और उनके भावको पहिचाननेका अभ्यास रखें तो शीघ्र ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति हो जाये। तथा जिनके तत्त्वज्ञान हुआ हो वे जीव द्रव्यानुयोगका अभ्यास करें तो उन्हें अपने श्रद्धानके अनुसार वह सर्व कथन प्रतिभासित होता है। जैसे किसीने कोई विद्या सीख ली, परन्तु यदि उसका अभ्यास करता रहे तो वह याद रहती है, न करे तो भूल जाता है। इस प्रकार इसको तत्त्वज्ञान हुआ, परन्तु यदि

उसके प्रतिपादक द्रव्यानुयोगका अभ्यास करता रहे तो वह तत्त्वज्ञान रहता है, न करे तो भूल जाता है। अथवा संक्षेपरूपसे तत्त्वज्ञान हुआ था, वह नाना युक्ति-हेतु-दृष्टान्तादि द्वारा स्पष्ट होजाये तो उसमें शिथिलता नहीं हो सकती। तथा इस अभ्याससे रागादि घटनेसे शीघ्र मोक्ष सधता है। इस प्रकार द्रव्यानुयोगका प्रयोजन जानना।

अब इन अनुयोगोंमें किस प्रकार व्याख्यान है, सो कहते हैं :—

प्रथमानुयोगमें व्याख्यानका विधान

प्रथमानुयोगमें जो मूल कथाएँ हैं, वे तो जैसी हैं, वैसी ही निरूपित कहते हैं। तथा उनमें प्रसंगोपात् व्याख्यान होता है, वह कोई तो ज्यों का त्यों होता है, कोई ग्रन्थकर्ताके विचारानुसार होता है, परन्तु प्रयोजन अन्यथा नहीं होता।

उदाहरण—जैसे तीर्थंकर देवोंके कल्याणकोंमें इन्द्र आये, यह कथा तो सत्य है। तथा इन्द्रने स्तुति की, उसका व्याख्यान किया; सो इन्द्रने तो अन्य प्रकारसे ही स्तुति की थी और यहाँ ग्रन्थकर्ताने अन्य ही प्रकारसे स्तुति करना लिखा है; परन्तु स्तुतिरूप प्रयोजन अन्यथा नहीं हुआ। तथा प्रसंगरूप कथा भी ग्रन्थकर्ता अपने विचारानुसार कहते हैं। जैसे—धर्मपरीक्षामें मूर्खोंकी कथा लिखी; सो वही कथा मनोवेगने कही थी ऐसा नियम नहीं है; परन्तु मूर्खपनेका पोषण करनेवाली कोई कथा कही थी ऐसे अभिप्रायका पोषण करते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

यहाँ कोई कहे—अयथार्थ कहना तो जैन शास्त्रमें सम्भव नहीं है ?

उत्तर :—अन्यथा तो उसका नाम है जो प्रयोजन अन्यका अन्य प्रगट करे। जैसे—किसीसे कहा कि तू ऐसा कहना; उसने वे ही अक्षर तो नहीं कहे, परन्तु उसी प्रयोजन सहित कहे तो उसे मिथ्यावादी नहीं कहते, ऐसा जानना।

तथा प्रथमानुयोगमें जिसकी मुख्यता हो उसीका पोषण करते हैं। जैसे—किसीने उपवास किया, उसका तो फल अल्प था, परन्तु उसे अन्य धर्मपरिणतिकी विशेषता हुई इसलिए विशेष उच्चपदकी प्राप्ति हुई; वहाँ उसको उपवासहीका फल निरूपित करते हैं। इसी प्रकार अन्य जानना।

यहाँ कोई कहे—ऐसा झूठा फल दिखलाना तो योग्य नहीं है; ऐसे कथनको प्रमाण कैसे करें ?

समाधान :—जो अज्ञानी जीव बहुत फल दिखाये बिना धर्ममें न लगे व पापसे न डरे, उनका भला करनेके अर्थ ऐसा वर्णन करते हैं। झूठ तो तब हो, जब धर्मके फलको पापका फल बतलायें, पापके फलको धर्मका फल बतलायें, परन्तु ऐसा तो है नहीं। उपदेशमें कहीं व्यवहारवर्णन है, कहीं निश्चय वर्णन है। यहाँ उपचाररूप व्यवहारवर्णन किया है, इस प्रकार इसे प्रमाण करते हैं। इसको तारतम्य नहीं मान लेना; तारतम्यका तो करणानुयोगमें निरूपण किया है, सो जानना।

तथा प्रथमानुयोगमें उपचाररूप किसी धर्मका अंग होनेपर सम्पूर्ण धर्म हुआ कहते हैं। जैसे—जिन जीवोंके शंका-कांक्षादिक नहीं हुए, उनको सम्यक्त्व हुआ कहते हैं, परन्तु किसी एक कार्यमें शंका-कांक्षा न करनेसे ही तो सम्मक्त्व नहीं होता, सम्यक्त्व तो तत्त्वश्रद्धान होनेपर होता है; परन्तु निश्चय सम्यक्त्वका तो व्यवहारसम्यक्त्वमें उपचार किया और व्यवहारसम्यक्त्वके किसी एक अंगमें सम्पूर्ण व्यवहारसम्यक्त्वका उपचार किया;—इस प्रकार उपचार द्वारा सम्यक्त्व हुआ कहते हैं।

तथा प्रथमानुयोगमें कोई धर्मबुद्धिसे अनुचित कार्य करे उसकी भी प्रशंसा करते हैं। जैसे विष्णुकुमारने मुनियोंका उपसर्ग दूर किया तो धर्मानुरागसे किया, परन्तु मुनिपद छोड़कर यह कार्य करना योग्य नहीं था; क्योंकि ऐसा कार्य तो गृहस्थधर्ममें सम्भव है, और गृहस्थ धर्मसे मुनिधर्म ऊँचा है; सो ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार किया वह अयोग्य है, परन्तु वात्सल्य अंगकी प्रधानतासे विष्णुकुमारजीकी प्रशंसा की है। इस छलसे औरोंको ऊँचा धर्म छोड़कर नीचा धर्म अंगीकार करना योग्य नहीं है। तथा कितने ही पुरुषोंने पुत्रादिककी प्राप्तिके अर्थ अथवा रोग-कष्टादि दूर करनेके अर्थ चैत्यालय पूजनादि कार्य किये, स्तोत्रादि किये, नमस्कारमन्त्र स्मरण किया, परंतु ऐसा करनेसे तो निःकांक्षितगुणका अभाव होता है, निदानबन्ध नामक आर्त्तध्यान होता है; पापहीका प्रयोजन अन्तरंगमें है इसलिये पापहीका बन्ध होता है; परन्तु मोहित होकर भी बहुत पापबंधका कारण कुदेवादिका तो पूजनादि नहीं किया, इतना उसका गुण ग्रहण करके उसकी प्रशंसा करते हैं; इस छलसे औरोंको लौकिक कार्योंके अर्थ धर्म साधन करना युक्त नहीं है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। इसी प्रकार प्रथमानुयोगमें अन्य कथन भी हों, उन्हें यथा सम्भव जानकर भ्रमरूप नहीं होना।

अब, करणानुयोगमें किसप्रकार व्याख्यान है सो कहते हैं—

करणानुयोगमें व्याख्यानका विधान

जैसा केवलज्ञान द्वारा जाना वैसा करणानुयोगमें व्याख्यान है। तथा केवलज्ञान द्वारा तो बहुत जाना परन्तु जीवको कार्यकारी जीव-कर्मादिकका व त्रिलोकादिकका ही निरूपण इसमें होता है। तथा उनका भी स्वरूप सर्व निरूपित नहीं हो सकता, इसलिये जिस प्रकार वचनगोचर होकर छद्मस्थके ज्ञानमें उनका कुछ भाव भासित हो, उस प्रकार संकुचित करके निरूपण करते हैं। यहाँ उदाहरणः—जीवके भावोंकी अपेक्षा गुणस्थान कहे हैं, वे भाव अनन्तस्वरूपसहित वचनगोचर नहीं हैं। वहाँ बहुत भावोंकी एक जाति करके चौदह गुणस्थान कहे हैं। तथा जीवको जाननेके अनेक प्रकार हैं, वहाँ मुख्य चौदह मार्गणाका निरूपण किया है। तथा कर्म परमाणु अनंतप्रकार शक्तियुक्त हैं; उनमें बहुतों की एक जाति करके आठ व एक सौ अड़तालीस प्रकृतियाँ कही हैं। तथा त्रिलोकमें अनेक रचनाएँ हैं, वहाँ कुछ मुख्य रचनाओंका निरूपण कहते हैं। तथा प्रमाणके अनन्त भेद हैं वहाँ संख्यातादि तीन भेद व इनके इक्कीस भेद निरूपित किये हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना।

तथा करणानुयोगमें यद्यपि वस्तुके क्षेत्र, काल भावादिक अखंडित हैं, तथापि छद्मस्थको हीनाधिक ज्ञान होनेके अर्थ प्रदेश, समय, अविभागप्रतिच्छेदादिककी कल्पना करके उनका प्रमाण निरूपित करते हैं। तथा एक वस्तुमें भिन्न भिन्न गुणोंका व पर्यायोंका निरूपण करते हैं; तथा जीव - पुद्गलादिक यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं, तथापि सम्बन्धादिक द्वारा अनेक द्रव्यसे उत्पन्न गति, जाति आदि भेदोंको एक जीवके निरूपित करते हैं; इत्यादि व्याख्यान व्यवहारनयकी प्रधानता सहित जानना; क्योंकि व्यवहारके बिना विशेष नहीं जान सकता। तथा कहीं निश्चयवर्णन भी पाया जाता है। जैसे—जीवादिक द्रव्योंका प्रमाण निरूपण किया, वहाँ भिन्न-भिन्न इतने ही द्रव्य हैं। वह यथासम्भव जान लेना।

तथा करणानुयोगमें जो कथन हैं वे कितने ही तो छद्मस्थके प्रत्यक्ष-अनुमानादिगोचर होते हैं; तथा जो न हों उन्हें आज्ञाप्रमाण द्वारा मानना। जिस प्रकार जीव-पुद्गलके स्थूल बहुत कालस्थायी मनुष्यादि पर्यायें व घटादि पर्यायें निरूपित की, उनके तो प्रत्यक्ष अनुमानादि हो सकते हैं; परन्तु प्रतिसमय सूक्ष्म-परिणमनकी अपेक्षा ज्ञानादिकके व स्निग्ध-रूक्षादिकके अंश निरूपित किये हैं वे आज्ञासे ही प्रमाण होते हैं। इसीप्रकार अन्यत्र जानना।

तथा करणानुयोगमें छद्मस्थोंकी प्रवृत्तिके अनुसार वर्णन नहीं किया है, केवलज्ञानगम्य पदार्थोंका निरूपण है। जिस प्रकार कितने ही जीव तो द्रव्यादिकका विचार करते हैं वा व्रतादिक पालते हैं, परन्तु उनके अंतरंग सम्यक्वचारित्र शक्ति नहीं है इसलिये उनको मिथ्यादृष्टि-अव्रती कहते हैं। तथा कितने ही जीव द्रव्यादिकके व व्रतादिकके विचार रहित हैं, अन्य कार्योंमें प्रवर्तते हैं व निद्रादि द्वारा निर्विचार हो रहे हैं, परन्तु उनके सम्यक्वादि शक्तिका सद्भाव है इसलिये उनको सम्यक्वी व व्रती कहते हैं।

तथा कहीं जिसकी व्यक्तता कुछ भासित नहीं होती, तथापि सूक्ष्मशक्तिसे सद्भावसे उसका वहाँ अस्तित्व कहा है। जैसे—मुनिके अब्रह्म कार्य कुछ नहीं है, तथापि नववें गुणस्थानपर्यन्त मैथुन संज्ञा कही है।

तथा करणानुयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादिक धर्मका निरूपण कर्म प्रकृतियोंके उपशमादिककी अपेक्षासहित सूक्ष्मशक्ति जैसे पायी जाती है वैसे गुणस्थानादिमें निरूपण करता है व सम्यग्दर्शनादिके विषयभूत जीवादिकोंका भी निरूपण सूक्ष्म भेदादि सहित करता है। यहाँ कोई करणानुयोगके अनुसार आप उद्यम करे तो हो नहीं सकता; करणानुयोगमें तो यथार्थ पदार्थ बतलानेका मुख्य प्रयोजन है, आचरण करानेकी मुख्यता नहीं है। इसलिये यह तो चरणानुयोगादिकके अनुसार प्रवर्तन करे, उससे जो कार्य होना है वह स्वयमेव ही होता है। जैसे—आप कर्मोंके उपशमादि करना चाहे तो कैसे होंगे? आप तो तत्त्वादिकका निश्चय करनेका उद्यम करे, उससे स्वयमेव ही उपशमादि सम्यक्त्व होते हैं। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। एक अन्तर्मुहूर्तमें ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरकर क्रमशः मिथ्यादृष्टि होता है और चढ़कर केवलज्ञान उत्पन्न करता है। सो ऐसे सम्यक्वादिके सूक्ष्मभाव बुद्धिगोचर नहीं होते, इसलिये करणानुयोगके अनुसार जैसे का तैसा जान तो ले, परन्तु प्रवृत्ति बुद्धिगोचर जैसे भला हो वैसी करे।

अब, चरणानुयोगमें व्याख्यानका विधान बतलाते हैं—

चरणानुयोगमें व्याख्यानका विधान

चरणानुयोगमें जिसप्रकार जीवोंके अपनी बुद्धिगोचर धर्मका आचरण हो वैसा उपदेश दिया है। वहाँ धर्म तो निश्चयरूप मोक्षमार्ग है वही है; उसके साधनादिक उपचारसे धर्म हैं, इसलिये व्यवहारनयकी प्रधानतासे नानाप्रकार उपचार धर्मके भेदादिकोंका इसमें निरूपण किया जाता है; क्योंकि निश्चयधर्ममें तो कुछ ग्रहण—त्यागका विकल्प नहीं है और इसके निचली अवस्थामें विकल्प छूटता नहीं है; इसलिये इस जीवको धर्मविरोधी कार्योंको छुड़ानेका और धर्म साधनादि कार्योंको ग्रहण करानेका उपदेश इसमें है। वह उपदेश दो प्रकारसे दिया जाता है—एक तो व्यवहारहीका उपदेश देते हैं, एक निश्चय सहित व्यवहारका उपदेश देते हैं। वहाँ जिनजीवोंके निश्चयका ज्ञान नहीं है व उपदेश देने पर भी नहीं होता दिखायी देता ऐसे मिथ्यादृष्टि जीव कुछ धर्मसन्मुख होनेपर उन्हें व्यवहारहीका उपदेश देते हैं। तथा जिन जीवोंको निश्चय—व्यवहारका ज्ञान है व उपदेश देनेपर उनका ज्ञान होता दिखायी देता है—ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव व सम्यक्त्व सन्मुख मिथ्यादृष्टि जीव उनको निश्चय सहित व्यवहारका उपदेश देते हैं; वहाँ व्यवहार उपदेशमें तो बाह्य क्रियाओंकी ही प्रधानता है; उनके उपदेशसे जीव पापक्रिया छोड़कर पुण्यक्रियाओंमें प्रवर्तता है, वहाँ क्रियाके अनुसार परिणाम भी तीव्रकषाय छोड़कर कुछ मन्दकषायी हो जाती हैं, सो मुख्य-रूपसे तो इस प्रकार है, परन्तु किसीके न हों तो मत होओ, श्री गुरु तो परिणाम सुधारनेके अर्थ बाह्य-क्रियाओंका उपदेश देते हैं। तथा निश्चय सहित व्यवहारके उपदेशमें परिणामोंकी ही प्रधानता है; उसके उपदेशसे तत्त्वज्ञानके अभ्यास द्वारा व वैराग्य भावना द्वारा परिणाम सुधारे वहाँ परिणामके अनुसार बाह्यक्रिया भी सुधर जाती है। परिणाम सुधरने पर बाह्यक्रिया सुधरती ही है; इसलिये श्री गुरु परिणाम सुधारनेका मुख्य उपदेश देते हैं। इस प्रकार दो प्रकारके उपदेशमें जहाँ व्यवहारका ही उपदेश हो वहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थ अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थ गुरु, दया—धर्मको ही मानना, औरको नहीं मानना। तथा जीवादिक तत्त्वोंका व्यवहार स्वरूप कहा है उसका श्रद्धान करना, शंकादि पच्चीस दोष न लगाना; निःशंकितादि अंग व संवेगादिक गुणोंका पालन करना इत्यादि उपदेश देते हैं; तथा सम्यग्ज्ञानके अर्थ जिनमतके शास्त्रोंका अभ्यास करना, अर्थ—व्यंजनादि अंगोंका साधन करना इत्यादि उपदेश देते हैं; तथा सम्यक्चारित्रके अर्थ एकदेश वा सर्वदेश हिंसादि पापोंका त्याग करना, व्रतादि अंगोंका पालन करना इत्यादि उपदेश देते हैं; तथा किसी जीवकी विशेष धर्मका साधन न होता जानकर एक आखड़ी आदिकका ही उपदेश देते हैं; जैसे—भीलको कौएका माँस छुड़वाया, ग्वालेको नमस्कारमन्त्र जपनेका उपदेश दिया, गृहस्थको चैत्यालय, पूजा—प्रभावनादि कार्यकों उपदेश देते हैं,—इत्यादि जैसा जीव हो उसे वैसा उपदेश देते हैं। तथा जहाँ निश्चयसहित व्यवहारका उपदेश हो, वहाँ सम्यग्दर्शनके अर्थ यथार्थ तत्त्वोंका श्रद्धान कराते हैं। उनका जो निश्चयस्वरूप है सो भूतार्थ है, व्यवहार स्वरूप है सो उपचार है—ऐसे श्रद्धानसहित व स्व-परके भेदज्ञान द्वारा परद्रव्यमें रागादि छोड़नेके प्रयोजनसहित उन तत्त्वोंका श्रद्धान करनेका उपदेश देते हैं। ऐसे श्रद्धानसे अरहन्तादिके सिवा अन्य देवादिक झूठ भासित हों तब स्वयमेव उनका मानना छूट जाता है, उसका भी निरूपण करते हैं। तथा सम्यग्ज्ञानके अर्थ संशयादिरहित उन्हीं तत्त्वोंको उसी प्रकार जाननेका उपदेश देते हैं उस जाननेको

कारण जिनशास्त्रोंका अभ्यास है, इसलिये उसे प्रयोजनके अर्थ जिनशास्त्रोंका भी अभ्यास स्वयमेव होता है; उसका निरूपण करते हैं। तथा सम्यक्चारित्रके अर्थ रागादि दूर करनेका उपदेश देते हैं; वहाँ एकदेश व सर्वदेश तीव्ररागादिकका अभाव होनेपर उनके निमित्तसे जो एकदेश व सर्वदेश पापक्रिया होती थी वह छूटती है, तथा मंदरागसे श्रावक-मुनिके व्रतोंकी प्रवृत्ति होती है और मंदरागका भी अभाव होनेपर शुद्धोपयोगकी प्रवृत्ति होती है, उसका निरूपण करते हैं। तथा यथार्थ श्रद्धान सहिस सम्यग्दृष्टियोंके जैसे कोई यथार्थ आखड़ी होती है या भक्ति होती है या पूजा-प्रभावनादि कार्य होते हैं या ध्यानादिक होते हैं उनका उपदेश देते हैं। जिनमतमें जैसा सच्चा परम्परामार्ग है वैसा उपदेश देते हैं। इस तरह दो प्रकारसे चरणानुयोगमें उपदेश जानना।

तथा चरणानुयोगमें तीव्रकषायोंका कार्य छुड़ाकर मंदकषायरूप कार्य करनेका उपदेश देते हैं। यद्यपि कषाय करना बुरा ही है, तथापि सर्व कषाय न छूटते जानकर जितने कषाय घटें उतना ही भला होगा—ऐसा प्रयोजन वहाँ जानना। जैसे—जिन जीवोंके आरम्भादि करनेकी व मन्दिरादि बनवानेकी, व विषय सेवनकी व क्रोधादि करनेकी इच्छा सर्वथा दूर होती न जाने, उन्हें पूजा-प्रभावनादिक करनेका व चैत्यालयादि बनवानेका व जिनदेवादिकके आगे शोभादिक, नृत्य-गानादिक करनेका व धर्मात्मा पुरुषोंकी सहाय आदि करनेका उपदेश देते हैं; क्योंकि इनमें परम्परा कषायका पोषण नहीं होता।

तथा चरणानुयोगमें कषायों जीवोंको कषाय उत्पन्न करके भी पापको छुड़ाते हैं और धर्ममें लगाते हैं। जैसे—पापका फल नरकादिकके दुःख दिखाकर उनको भय कषाय उत्पन्न करके पापकार्य छुड़ाते हैं, तथा पुण्यके फल स्वर्गादिकके सुख दिखाकर उन्हें लोभ कषाय उत्पन्न करके धर्मकार्योंमें लगाते हैं।

तथा चरणानुयोगमें छद्मस्थकी बुद्धिगोचर स्थूलपनेकी अपेक्षासे लोकप्रवृत्तिकी मुख्यता सहित उपदेश देते हैं; परन्तु केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मपनेकी अपेक्षा नहीं देते; क्योंकि उसका आचरण नहीं हो सकता। यहाँ आचरण करानेका प्रयोजन है। जैसे—अणुव्रतीके त्रसहिंसाका त्याग कहा है और उसके स्त्री-सेवनादि क्रियाओंमें त्रसहिंसा होती है। यह भी जानता है कि—जिनवाणीमें यहाँ त्रस कहे हैं, परन्तु इसके त्रस मारनेका अभिप्राय नहीं है और लोकमें जिसका नाम त्रसघात है उसे नहीं करता है; इसलिये उस अपेक्षा उसके त्रसहिंसाका त्याग है। तथा व्रती जीव त्याग व आचरण करता है सो चरणानुयोगकी पद्धति अनुसार व लोकप्रवृत्तिके अनुसार त्याग करता है। जैसे—किसीने त्रसहिंसाका त्याग किया, वहाँ चरणानुयोगमें व लोकमें जिसे त्रसहिंसा कहते हैं उसका त्याग किया है, केवलज्ञानादि द्वारा जो त्रस देखे जाते हैं उनकी हिंसाका त्याग बनता ही नहीं।

तथा चरणानुयोगमें व्यवहार-लोक प्रवृत्तिकी अपेक्षा ही नामादिक कहते हैं। जिस प्रकार सम्यक्स्त्रीको पात्र कहा तथा मिथ्यास्त्रीको अपात्र कहा; सो यहाँ जिसके जिनदेवादिकका श्रद्धान पाया जाये वह तो सम्यक्स्त्री, जिसके उनका श्रद्धान नहीं है वह मिथ्यास्त्री जानना। क्योंकि दान देना चरणानुयोगमें कहा है, इसलिये चरणानुयोगके ही सम्यक्त्व-मिथ्यात्व ग्रहण करना। चरणानुयोगकी अपेक्षा सम्यक्त्व-मिथ्यात्व ग्रहण करनेसे वही जीव ग्यारहवें गुणस्थानमें था और वही अन्तर्मुहूर्तमें पहिले गुणस्थानमें आये,

तो वहाँ दातार पात्र-अपात्रका कैसे निर्णय कर सके ? तथा द्रव्यानुयोग की अपेक्षा सम्यक्त्व-मिथ्यात्व प्रहण करने पर मुनिसंघमें द्रव्यलिंगी भी हैं और भावलिंगी भी हैं; सो प्रथम तो उनका ठीक (निर्णय) होना कठिन है, क्योंकि बाह्य प्रवृत्ति समान है, तथा यदि कदाचित् सम्यक्त्वीको किसी चिह्न द्वारा ठीक (निर्णय) हो जाये और वह उसकी भक्ति न करे तो औरोंको संशय होगा कि इसकी भक्ति क्यों नहीं की ?—इस प्रकार उसका मिथ्यादृष्टिपना प्रगट हो तब संघमें विरोध उत्पन्न हो; इसलिये यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व-मिथ्यात्वकी अपेक्षा कथन जानना ।

यहाँ कोई प्रश्न करे—सम्यक्त्वी तो द्रव्यलिंगीको अपनेसे हीनगुणयुक्त मानता है, उसकी भक्ति कैसे करे ?

समाधान:—व्यवहारधर्मका साधन द्रव्यलिंगीके बहुत है और भक्ति करना भी व्यवहार ही है, इसलिये जैसे—कोई धनवान हो, परन्तु जो कुलमें बड़ा हो उसे कुल अपेक्षा बड़ा जानकर उसका सत्कार करता है; उसी प्रकार आप सम्यक्त्व गुण सहित है, परन्तु जो व्यवहारधर्ममें प्रधान हो उसे व्यवहारधर्मकी अपेक्षा गुणाधिक मानकर उसकी भक्ति करता है, ऐसा जानना । इसी प्रकार जो जीव बहुत उपवासादि करे उसे तपस्वी कहते हैं; यद्यपि कोई ध्यान-अध्ययनादि विशेष करता है वह उत्कृष्ट तपस्वी है तथापि यहाँ चरणानुयोगमें बाह्यतपकी ही प्रधानता है; इसलिये उसीको तपस्वी कहते हैं । इस प्रकार अन्य नामादिक जानना ऐसे ही अन्य अनेक प्रकार सहित चरणानुयोगमें व्याख्यानका विधान जानना ।

अब, द्रव्यानुयोगमें व्याख्यानका विधान कहते हैं:—

द्रव्यानुयोगमें व्याख्यानका विधान

जीवोंके जीवादि द्रव्योंका यथार्थ श्रद्धान जिस प्रकार हो, उस प्रकार विशेष, युक्ति, हेतु, दृष्टान्तादिकका यहाँ निरूपण करते हैं; क्योंकि इसमें यथार्थ श्रद्धान करानेका प्रयोजन है । वहाँ यद्यपि जीवादि वस्तु अभेद हैं तथापि उनमें भेदकल्पना द्वारा व्यवहारसे द्रव्य-गुण-पर्यायादिकके भेदोंका निरूपण करते हैं । तथा प्रतीति करानेके अर्थ अनेक युक्तियों द्वारा उपदेश देते हैं अथवा प्रमाण-नय द्वारा उपदेश देते हैं वह भी युक्ति है, तथा वस्तुके अनुमान-प्रत्यभिज्ञानादिक करनेको हेतु-दृष्टान्तादिक देते हैं; इस प्रकार यहाँ वस्तुकी प्रतीति करानेको उपदेश देते हैं । तथा यहाँ मोक्षमार्गका श्रद्धान करानेके अर्थ जीवादि तत्वोंका विशेष, युक्ति, हेतु, दृष्टान्तादि द्वारा निरूपण करते हैं; वहाँ स्व-पर भेदविज्ञानादिक जिस प्रकार हों उस प्रकार जीव-अजीवका निर्णय करते हैं । तथा वीतरागभाव जिस प्रकार हो उस प्रकार आस्रवादि-कका स्वरूप बदलाते हैं और वहाँ मुख्यरूपसे ज्ञान-वैराग्यके कारण जो आत्मानुभवनादिक उनकी महिमा गाते हैं । तथा द्रव्यानुयोगमें निश्चय अध्यात्म उपदेशकी प्रधानता हो, वहाँ व्यवहारधर्मका भी निषेध करते हैं । जो जीव आत्मानुभवका उपाय नहीं करते और बाह्य क्रियाकाण्डमें मग्न हैं, उनको वहाँसे उदास करके आत्मानुभवनादिमें लगानेको व्रत-शील-संयमादिकका हीनपना प्रगट करते हैं । वहाँ ऐसा नहीं जान

लेना कि इनको छोड़कर पापमें लगाना; क्योंकि उस उपदेशका प्रयोजन अशुभमें लगानेका नहीं है। शुद्धोपयोगमें लगानेको शुभोपयोगका निषेध करते हैं।

यहाँ कोई कहे कि—अध्यात्मशास्त्रमें पुण्य—पाप समान कहे हैं, इसलिये शुद्धोपयोग हो तो भला ही है, न हो तो पुण्यमें लगे या पापमें लगे ?

उत्तर:—जैसे शूद्र जातिकी अपेक्षा जाट, चांडाल समान कहे हैं, परन्तु चांडाल से जाट कुछ उत्तम है; वह अस्पृश्य है यह स्पृश्य है; उसी प्रकार बन्ध कारणकी अपेक्षा पुण्य—पाप समान हैं परन्तु पापसे पुण्य कुछ भला है; वह तीव्रकषायरूप है यह मन्दकषायरूप है; इसलिये पुण्य छोड़कर पापमें लगना युक्त नहीं है—ऐसा जानना।

तथा जो जीव जिनबिम्ब भक्ति आदि कार्योंमें ही मग्न हैं उनको आत्मश्रद्धानादि करानेको “देहमें देव है, मन्दिरमें नहीं”—इत्यादि उपदेश देते हैं। वहाँ ऐसा नहीं जान लेना कि—भक्ति छोड़कर भोजनादिकसे अपनेको सुखी करना; क्योंकि उस उपदेशका प्रयोजन ऐसा नहीं है। इसी प्रकार अन्य व्यवहारका निषेध वहाँ किया हो उसे जानकर प्रमादी नहीं होना; ऐसा जानना कि—जो केवल व्यवहार साधनमें ही मग्न हैं उनको निश्चयरुचि करानेके अर्थ व्यवहारको हीन बतलाया है। तथा उन्हीं शास्त्रोंमें सम्यग्दृष्टिके विषय—भोगादिकको बंधका कारण नहीं कहा, निर्जराका कारण कहा, परन्तु यहाँ भोगोंका उपादेयपना नहीं जान लेना। वहाँ सम्यग्दृष्टिकी महिमा बतलानेको जो तीव्रबंधके कारण भोगादिक प्रसिद्ध थे उन भोगादिकके होनेपर भी श्रद्धानशक्तिके बलसे मन्द बन्ध होने लगा उसे गिना नहीं और उसी बलसे निर्जरा विशेष होने लगी, इसलिये उपचारसे भोगोंको भी बन्धका कारण नहीं कहा, निर्जराका कारण कहा। विचार करनेपर भोग निर्जराके कारण हों तो उन्हें छोड़कर सम्यग्दृष्टि मुनिपदका ग्रहण किसलिये करे ? यहाँ इस कथनका इतना ही प्रयोजन है कि—देखो, सम्यक्त्वकी महिमा ! जिसके बलसे भोग भी अपने गुणको नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्य भी कथन हों तो उनका यथार्थपना जान लेना।

तथा द्रव्यानुयोगमें भी चरणानुयोगवत् ग्रहण—त्याग करानेका प्रयोजन है; इसलिये छद्मस्थके बुद्धि-गोचर परिणामोंकी अपेक्षा ही वहाँ कथन करते हैं। इतना विशेष है कि—चरणानुयोगमें तो बाह्यक्रियाकी मुख्यतासे वर्णन करते हैं, द्रव्यानुयोगमें आत्मपरिणामोंकी मुख्यतासे निरूपण करते हैं, परन्तु करणानुयोगवत् सूक्ष्मवर्णन नहीं करते। उसके उदाहरण देते हैं:—

उपयोगके शुभ, अशुभ, शुद्ध—ऐसे तीन भेद कहे हैं, वहाँ धर्मानुरागरूप परिणाम वह शुभोपयोग, पापानुरागरूप व द्वेषरूप परिणाम वह अशुभोपयोग और राग—द्वेषरहित परिणाम वह शुद्धोपयोग—ऐसा कहा है; सो इस छद्मस्थके बुद्धिगोचर परिणामोंकी अपेक्षा यह कथन है; करणानुयोगमें कषायशक्तिकी अपेक्षा गुणस्थानादिमें संक्लेशविशुद्ध परिणामोंकी अपेक्षा निरूपण किया है वह विवक्षा यहाँ नहीं है। करणानुयोगमें तो रागादि रहित शुद्धोपयोग यथाख्यातचारित्र होनेपर होता है, वह मोहके नाशसे स्वयमेव होगा; निचली अवस्थावाला शुद्धोपयोगका साधन कैसे करे ? तथा द्रव्यानुयोगमें शुद्धोपयोग करनेका ही मुख्य उपदेश है; इसलिये वहाँ छद्मस्थ जिस कालमें बुद्धिगोचर भक्ति आदि व हिंसा आदि कार्यरूप परिणामोंको छोड़कर

आत्मानुभवनादि कार्योंमें प्रवर्तें उसकाल उसे शुद्धोपयोगी कहते हैं। यद्यपि यहाँ केवलज्ञानगोचर सूक्ष्मरागादिक हैं, तथापि उसकी विवक्षा यहाँ नहीं की, अपनी बुद्धिगोचर रागादिक छोड़ता है इस अपेक्षा उसे शुद्धोपयोगी कहा है। इसी प्रकार स्व-पर श्रद्धानादिक होनेपर सम्यक्त्वादिक कहे, वह बुद्धिगोचर अपेक्षासे निरूपण है; सूक्ष्म भावोंकी अपेक्षा गुणस्थानादिमें सम्यक्त्वादिका निरूपण करणानुयोगमें पाया जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र जानना। इसलिये द्रव्यानुयोगके कथनकी विधि करणानुयोगसे मिलाना चाहे तो कहीं तो मिलती है, कहीं नहीं मिलती। जिस प्रकार यथाख्यातचारित्र होनेपर तो दोनों अपेक्षा शुद्धोपयोग है, परन्तु निचली दशगमें द्रव्यानुयोग अपेक्षासे तो कदाचित् शुद्धोपयोग होता है, परन्तु करणानुयोग अपेक्षासे सदाकाल कषाय अंशके सद्भावसे शुद्धोपयोग नहीं है। इसी प्रकार अन्य कथन जान लेना।

तथा द्रव्यानुयोगमें परमतमें कहे हुए तत्त्वादिकको असत्य बतलानेके अर्थ उनका निषेध करते हैं; वहाँ द्वेषबुद्धि नहीं जानना। उनको असत्य बतलाकर सत्य श्रद्धान करानेका प्रयोजन जानना।

अब, इन अनुयोगोंमें कैसी पद्धतिकी मुख्यता पायी जाती है सो कहते हैं:—

अनुयोगोंमें पद्धति विशेष

प्रथमानुयोगमें तो अलंकार शास्त्रकी वा काव्यादि शास्त्रोंकी पद्धति मुख्य है, क्योंकि अलंकारादिसे मन रंजायमान होता है; सीधी बात कहनेसे ऐसा उपयोग नहीं लगता जैसा अलंकारादि युक्तिसहित कथनसे उपयोग लगता है। तथा परोक्ष बातको कुछ अधिकतापूर्वक निरूपण किया जाये तो उसका स्वरूप भलीभाँति भासित होता है। तथा करणानुयोगमें गणित आदि शास्त्रोंकी पद्धति मुख्य है, क्योंकि वहाँ द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावके प्रमाणादिकका निरूपण करते हैं; सो गणित ग्रन्थोंकी आम्नायसे उसका सुगम जानपना होता है। तथा चरणानुयोगमें सुभाषित नीतिशास्त्रोंकी पद्धति मुख्य है, क्योंकि वहाँ आचरण कराना है, इसलिये लोकप्रवृत्तिके अनुसार नीतिमार्ग बतलाने पर वह आचरण करता है। तथा द्रव्यानुयोगमें न्यायशास्त्रोंकी पद्धति मुख्य है, क्योंकि वहाँ निर्णय करनेका प्रयोजन है और न्यायशास्त्रोंमें निर्णय करनेका मार्ग दिखाया है। इस प्रकार इन अनुयोगोंमें मुख्य पद्धति है। और भी अनेक पद्धतिसहित व्याख्यान इनमें पाये जाते हैं।

तथा जैनमतमें बहुत शास्त्र तो इन चारों अनुयोगोंमें गर्भित हैं। तथा व्याकरण, न्याय, छन्द, कोषादिक शास्त्र व वैद्यक, ज्योतिष, मन्त्रादि शास्त्र भी जिनमतमें पाये जाते हैं। उनका क्या प्रयोजन है सो सुनो—

व्याकरण, न्यायादिकका अभ्यास होनेपर अनुयोगरूप शास्त्रोंका अभ्यास हो सकता है; इसलिये व्याकरणादि शास्त्र कहे हैं।

यहाँ इतना है कि—ये भी जैनशास्त्र हैं ऐसा जानकर इनके अभ्यासमें बहुत नहीं लगना। यदि बहुत बुद्धिसे इनका सहज जानना हो और इनको जाननेसे अपने रागादिक विकार बढ़ते न जाने, तो इनका भी जानना होओ; अनुयोगशास्त्रवत् ये शास्त्र बहुत कार्यकारी नहीं हैं; इसलिये इनके अभ्यासका विशेष उद्यम करना योग्य नहीं है।